सिंघी जैन ग्रन्थमाला

जैन आगमिक, दार्शनिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक, कथात्मक–इत्यादि विविधविषयगुम्फित
प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, प्राचीनगूर्जर, राजस्थानी आदि भाषानिबद्ध
बहु उपयुक्त पुरातनवाङ्मय तथा नवीन संशोधनात्मक
साहित्यप्रकाशिनी जैन ग्रन्थावलि ।

कलकत्तानिवासी स्वर्गीय **श्रीमद् डालचन्दजी सिंघी** की पुण्यस्मृतिनिमित्त
तदीयसुपुत्र **श्रीमान् बहादुरसिंहजी सिंघी** द्वारा संस्थापित

मुख्य सम्पादक

जिनविजय मुनि

अधिष्ठाता, सिंघी जैन ज्ञानपीठ.

शान्तिनिकेतन

ग्रन्थांक १

प्राप्तिस्थान

संचालक, सिंघी जैन ग्रन्थमाला.

शान्तिनिकेतन, बंगाल.

स्थापनाब्द] [वि० सं० १९८७

प्रबन्धचिन्तामणि की संकलना।

इस ग्रन्थका संकलन और प्रकाशन निम्न प्रकार, ५ भागोंमें, पूर्ण होगा।

(१) प्रथम भाग. भिन्न भिन्न प्रतियोंके आधार पर संशोधित-विविध पाठान्तर समवेत-मूलग्रन्थ; १ परिशिष्ट; मूलग्रन्थ और परिशिष्टमें आये हुये संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषामय पद्योंकी अकारादिक्रमानुसार सूचि; पाठ संशोधनके लिये काममें लाई गई पुरातन प्रतियोंका सचित्र वर्णन।

(२) द्वितीय भाग. प्रबन्धचिन्तामणिगत प्रबन्धोंके साथ सम्बन्ध और समानता रखनेवाले अनेकानेक पुरातन प्रबन्धोंका संग्रह; पद्यानुक्रमसूचि; विशेष नामानुक्रम; संक्षिप्त प्रस्तावना और प्रबन्ध संग्रहोंकी मूल प्रतियोंका सचित्र परिचय।

(३) तृतीय भाग. पहले और दूसरे भागका संपूर्ण हिंदी भाषान्तर।

(४) चतुर्थ भाग. प्रबन्धचिन्तामणिवर्णित व्यक्तियोंके साथ सम्बन्ध रखनेवाले शिलालेख, ताम्रपत्र, पुस्तकप्रशस्ति आदि जितने समकालीन साधन और ऐतिह्य प्रमाण उपलब्ध होते हैं उनका एकत्र संग्रह और तत्परिचायक उपयुक्त विस्तृत विवेचन; प्राक्कालीन और पश्चात्कालीन अन्यान्य ग्रन्थोंमें उपलब्ध प्रमाणभूत प्रकरणों, उल्लेखों और अवतरणोंका संग्रह; कुछ शिलालेख, ताम्रपत्र और प्राचीन ताडपत्रोंके चित्र।

(५) पञ्चम भाग. प्रबन्धचिन्तामणिग्रथित सब बातोंका विवेचन करनेवाली विस्तृत प्रस्तावना-जिसमें तत्कालीन ऐतिहासिक, भौगोलिक, सामाजिक, धार्मिक और राजकीय परिस्थितिका सविशेष ऊहापोह और सिंहावलोकन किया-जायगा। अनेक प्राचीन मंदिर, मूर्तियां इत्यादिके चित्र भी दिये जायँगे।

THE SCHEME OF THE WORK OF PRABANDHACINTĀMAṆI

[The work will be completed in five parts.]

Part I. A critical Edition of the original Text in Sanskrit with various readings based on the most reliable MSS; An Appendix; An alphabetical Index of all Sanskrit, Prākrit and Apabhraṃs'a verses occurring in the text and the appendix; A short Introduction in Hindi describing the MSS. and materials used for preparing the text along with plates.

Part II. A collection of many old Prabandhas similar and analogous to the matter in the Prabandhacintāmani; Indices of the verses and proper names; A short Introduction in Hindi describing the MSS. and materials used in preparing this Part, along with plates.

Part III. A Complete Hindi Translation of Parts I and II.

Part IV. A collection of epigraphical records, *viz.* stone inscriptions, copper plates, colcphons and Pras'astis from the contemporary MSS; all available historical data dealing with the Persons described or referred to in the Prabandhacintāmaṇi along with a critical account in Hindi of the above, as also many plates. and a collection of authoritative references and quotations from other works.

Part V. An elaborate general Introduction surveying the historical, geographical, social, political and religious conditions of that period; with plates.

आदावुन्मीलितं येन ज्ञानचक्षुर्मदीयकम् ।
देवीहंसगुरोस्तस्य स्मृतये इदमर्प्यते ॥

प्रबन्धचिन्तमणिग्रन्थगतप्रबन्धानाम्

अनुक्रमणिका ।

प्रथमः प्रकाशः ।

द्वितीयः प्रकाशः ।

तृतीयः प्रकाशः ।

चतुर्थः प्रकाशः ।

पञ्चमः प्रकाशः ।

॥ सिंघीजैनग्रन्थमालासंस्थापकप्रशस्तिः ॥

अस्ति बङ्गाभिधे देशे सुप्रसिद्धा मनोरमा । मुर्शिदाबाद इत्याख्या पुरी वैभवशालिनी ॥
निवसन्त्यनेके तत्र जैना ऊकेशवंशजाः । धनाढ्या नृपसदृशा धर्मकर्मपरायणाः ॥
श्रीडालचन्द इत्यासीत् तेष्वेको बहुभाग्यवान् । साधुवत् सच्चरित्रो यः सिंघीकुलप्रभाकरः ॥
बाल्य एवागतो यो हि कर्तुं व्यापारविस्तृतिम् । कलिकातामहापुर्यां धृतधर्मार्थनिश्चयः ॥
कुशाग्रया स्वबुद्ध्यैव सद्वृत्त्या च सुनिष्ठया । उपार्ज्य विपुलां लक्ष्मीं जातो कोट्यधिपो हि सः ॥
तस्य मन्नुकुमारीति सन्नारीकुलमण्डना । पतिव्रता प्रिया जाता शीलसौभाग्यभूषणा ॥
श्रीबहादुरसिंहाख्यः सद्गुणी सुपुत्रस्तयोः । अस्त्येष सुकृती दानी धर्मप्रियो धियां निधिः ॥
प्राप्ता पुण्यवताऽनेन प्रिया तिलकसुन्दरी । तस्याः सौभाग्यदीपेन प्रदीप्तं यद्गृहाङ्गणम् ॥
श्रीमान् राजेन्द्रसिंहोऽस्ति ज्येष्ठपुत्रः सुशिक्षितः । सः सर्वकार्यदक्षत्वात् बाहुर्यस्य हि दक्षिणः ॥
नरेन्द्रसिंह इत्याख्यस्तेजस्वी मध्यमः सुतः । सूनुर्वीरेन्द्रसिंहश्च कनिष्ठः सौम्यदर्शनः ॥
सन्ति त्रयोऽपि सत्पुत्रा आप्तभक्तिपरायणाः । विनीताः सरला भव्याः पितुर्मार्गानुगामिनः ॥
अन्येऽपि बहवश्चास्य सन्ति स्वस्रादिबान्धवाः । धनैर्जनैः समृद्धोऽयं ततो राजेव राजते ॥

अन्यच्च–

सरस्वत्यां सदासक्तो भूत्वा लक्ष्मीप्रियोऽप्ययम् । तत्राप्येष सदाचारी तच्चित्रं विदुषां खलु ॥
न गर्वो नाऽप्यहंकारो न विलासो न दुष्कृतिः । दृश्यतेऽस्य गृहे क्वापि सतां तद् विस्मयास्पदम् ॥
भक्तो गुरुजनानां यो विनीतः सज्जनान् प्रति । बन्धुजनेऽनुरक्तोऽस्ति प्रीतः पोष्यगणेष्वपि ॥
देश-कालस्थितिज्ञोऽयं विद्या-विज्ञानपूजकः । इतिहासादिसाहित्य-संस्कृति-सत्कलाप्रियः ॥
समुन्नत्यै समाजस्य धर्मस्योत्कर्षहेतवे । प्रचारार्थं सुशिक्षाया व्ययत्येष धनं घनम् ॥
गत्वा सभा-समित्यादौ भूत्वाऽध्यक्षपदाङ्कितः । दत्त्वा दानं यथायोग्यं प्रोत्साहयति कर्मठान् ॥
एवं धनेन देहेन ज्ञानेन शुभनिष्ठया । करोत्ययं यथाशक्ति सत्कर्माणि सदाशयः ॥
अथान्यदा प्रसङ्गेन स्वपितुः स्मृतिहेतवे । कर्तुं किञ्चिद् विशिष्टं यः कार्यं मनस्यचिन्तयत् ॥
पूज्यः पिता सदैवासीत् सम्यग्-ज्ञानरुचिः परम् । तस्मात्तज्ज्ञानवृद्ध्यर्थं यतनीयं मया वरम् ॥
विचार्यैवं स्वयं चित्ते पुनः प्राप्य सुसम्मतिम् । श्रद्धास्पदस्वमित्राणां विदुषां चापि तादृशाम् ॥
जैनज्ञानप्रसारार्थं स्थाने शान्तिनिकेतने । सिंघीपदाङ्कितं जैनज्ञानपीठमतिष्ठिपत् ॥
श्रीजिनविजयो विज्ञो तस्याधिष्ठातृसत्पदम् । स्वीकर्तुं प्रार्थितोऽनेन ज्ञानोद्धाराभिलाषिणा ॥
अस्य सौजन्य-सौहार्द-स्थैर्यौदार्यादिसद्गुणैः । वशीभूयाति मुदा येन स्वीकृतं तत्पदं वरम् ॥
यस्यैव प्रेरणां प्राप्य श्रीसिंघीकुलकेतुना । स्वपितृश्रेयसे चैषा ग्रन्थमाला प्रकाश्यते ॥
विद्वज्जनकृताह्लादा सच्चिदानन्ददा सदा । चिरं नन्दत्वियं लोके जिनविजयभारती ॥

किञ्चित् प्रास्ताविक ।

प्रबन्धचिन्तामणि ग्रन्थके बारेमें जितनी ज्ञातव्य बातें हैं उन सबका निर्देश, बहुत कुछ विस्तारके साथ, हम आगेके भागोंमें–चौथे पांचवें ग्रन्थमें–करना चाहते हैं इस लिये यहां पर अन्य कोई विशेष बातका उल्लेख न कर, सिर्फ इस ग्रन्थकी प्रस्तुत आवृत्तिके जन्मका थोडासा पूर्वेतिहास बतलाना, और उसके साथ इस ग्रन्थके, इतः पूर्व, जो संस्करण और भाषान्तर आदि हुए हैं उनका परिचय देते हुए, जिन पुरातन हस्तलिखित पोथीयोंका आश्रय लेकर हमने इसका संशोधन और सम्पादन किया है उनका परिचय मात्र कराना आवश्यक समझते हैं ।

प्रस्तुत आवृत्तिकी जन्मकथा.

प्रबन्धचिन्तामणि जैसे ऐतिहासिक महत्त्व रखनेवाले अनेक ग्रन्थ, और ऐसे ही उपयोगी अन्यान्य अगणित ऐतिहासिक साधन, जैन भण्डारोंमें पडे पडे सड रहे हैं लेकिन उनका ठीक ठीक परिचय विद्वानोंको न मिल सकनेके कारण वे अभी तक प्रकाशमें नहीं आये । इस वस्तुका खयाल हमें पाटणके पुरातन जैन भण्डारोंका अवलोकन करते समय, आजसे कोई १८–२० वर्ष पहले हुआ । विद्यमान जैन साधुसमूहमें जिस ज्ञाननिमग्न स्थितप्रज्ञ मुनिमूर्तिका दर्शन और चरणस्पर्श करनेसे हमारी इस ऐतिहासिक जिज्ञासाका विकास हुआ उस यथार्थ साधुपुरुष–**पूज्यपाद प्रवर्तक श्रीमत्कान्तिविजयजी महाराज**–की वात्सल्यपूर्ण प्रेरणा पाकर हमने यथाबुद्धि इस विषयमें अपना अध्ययन–अन्वेषण–संशोधन–सम्पादनादि कार्य करना शुरू किया । हमारा संकल्प हुआ कि जैन भण्डारोंमें इतिहासोपयोगी जितनी सामग्री उपलब्ध हों उसे खोज खोज कर इकट्ठी की जाय और आधुनिक विद्वन्मान्य पद्धतिसे उसका संशोधन और सम्पादन कर प्रकाशन किया जाय । हमारे इस संकल्पमें, उक्त पूज्यवरके गुरुभक्त और ज्ञानोपासक शिष्यवर्य श्रीमान् **चतुरविजयजी** महाराज तथा प्रशिष्यवर श्रीमान् **पुण्यविजयजी**की सम्पूर्ण सहकारिता प्राप्त होने पर, हमने उन्हीं स्वाध्यायनिरत ज्ञानतपस्वी प्रवर्तकजीके पुण्यनामसे अंकित–**प्रवर्तक श्रीकान्तिविजय जैन इतिहासमाला**–नामक ग्रन्थावलिका प्रारंभ किया और भावनगरकी **श्री जैन आत्मानंद सभा** द्वारा उसे प्रकाशित करने लगे। **विज्ञप्तित्रिवेणी, कृपारसकोष, शत्रुंजयतीर्थोद्धारप्रबन्ध, जैन ऐतिहासिक गूर्जर काव्यसंचय** और **प्राचीन जैनलेखसंग्रह** इत्यादि ग्रन्थ उस समय प्रकट हुए और विद्वानोंने उनका अपूर्व ऐतिहासिक महत्त्व समझ कर उस प्रयत्नको खूब सराहा ।

हमने अपना यह संशोधन कार्य, संवत् १९७१–७२ में, जब हमारा निवास बडौदेमें था, प्रारंभ किया था । उन्हीं दिनोंमें, बडौदा राज्यकी ओरसे प्रकाशित होने वाली 'गायकवाडस् ओरिएन्टल सीरीझ' का प्रकाशन कार्य भी शुरू हुआ था । उस सीरीझके उत्पादक स्वर्गीय साक्षररत्न श्रीचिमणलाल डाह्याभाई दलाल एम्. ए. हमारे घनिष्ठ मित्र थे । पाटणके जैन भण्डारोंका व्यवस्थित पर्यवेक्षण करनेमें तथा उन भण्डारोंमेंसे अलभ्य–दुर्लभ्य ग्रन्थोंकी प्राप्ति करनेमें भाई दलालजीको जो यथेष्ट सुविधा मिली थी वह उक्त पूज्यप्रवर प्रवर्तकजी ही की सुकृपाका फल था। इस लिये उनका और हमारा एक प्रकारका सतीर्थ जैसा सम्बन्ध था । समानशील और समव्यसनी होनेके कारण, वे प्रतिदिन घंटों, बडौदेके जैन उपाश्रयमें आकर बैठते–ऊठते और हम उनके और वे हमारे कार्यमें सहयोग देते–लेते थे । इस सहयोगके परिणाममें, कितनेएक जैन ऐतिहासिक ग्रन्थ 'गायकवाडस् ओरिएन्टल सिरीझ' द्वारा भी प्रकट करनेका उन्होंने निश्चय किया और उनमेंसे, मोहराजपराजय नाटक का सम्पादन कार्य उक्त पूज्यवरके प्रधानशिष्य श्रीचतुरविजयजी महाराजने, कुमारपालप्रतिबोध नामक विशाल प्राकृत ग्रन्थका सम्पादन हमने और वसन्तविलास, नरनारायणानन्द, हम्मीरमदमर्दन आदि ग्रन्थोंका सम्पादन कार्य स्वयं दलालजीने अपने हाथमें लिया ।

नियमानुसार बडौदासे हमारा प्रस्थान हुआ और संकलिपत कार्यमें विशृंखलता उत्पन्न हुई। 'प्राचीनजैनलेखसंग्रह द्वितीय भाग,' 'कुमारपालप्रतिबोध' और 'जैनऐतिहासिक गूर्जरकाव्यसंचय' का जो कार्य अपूर्ण था वह तो किसी तरह पूरा किया गया लेकिन और विशेष कार्य कुछ न हो सका।

उसी समय पूनाके सुप्रसिद्ध 'भाण्डारकर प्राच्यविद्यासंशोधनमन्दिर' (Bhandarkar Oriental Research Institute) की स्थापना हुई। बडौदासे प्रस्थान कर हम जब बम्बईमें चतुर्मास रहे थे तब, इस 'संशोधनमन्दिर'के मुख्य उत्पादक और प्राणप्रतिष्ठापक स्वर्गीय प्रो० गुणे और श्रीमान् डॉ० बेल्वलकर आदि सज्जनोंका एक डेप्युटेशन बम्बईके जैनसमाजकी मुलाखात लेनेको आया और प्रसङ्गवश हमारा परिचय पा कर उन सज्जनोंने हमको पूना आनेका निमन्त्रण दिया। चतुर्मासके बाद हम घूमते घूमते पूना पहुंचे। वहां उस संस्थाके उद्देश्यादिका विशेषावलोकन कर तथा उसके अधिकारमें आनेवाले राजकीय प्राचीनग्रन्थसङ्ग्रहका विशाल साहित्यभण्डार–जिसमें हजारों जैन-ग्रन्थोंका भी समावेश होता है–का दिग्दर्शन कर उस संस्थाके विकासमें हमने भी यथाशक्ति योग देनेका प्रयत्न किया। उसके परिणाममें हमारी स्थिति पूनामें निश्चित हुई। वहां, इस प्राच्यविद्यासंशोधनमन्दिरके काममें योग देनेके साथ 'भारत जैन विद्यालय' नामक संस्थाका भी एक विशाल आयतन खडा किया गया। सन् १९१८ में, पूनाके उक्त संशोधनमन्दिरके उपक्रमसे भारतीय पुराविदोंकी परिषद्का प्रथम अधिवेशन (First Oriental Conference) हुआ। उसमें सम्मीलित होने वाले कुछ विद्याप्रिय और साहित्योपासक जैनमित्रोंको प्रेरित कर, हमने फिर अपने उसी संकल्पको कार्यमें प्रवृत्त करनेका एक नया आयोजन किया। **जैन साहित्य संशोधक समिति** नामक एक समिति का प्रतिष्ठापन कर कुछ परिचित स्नेहिगणकी सहायतासे **जैन साहित्य संशोधक** नामका बृहदाकार त्रैमासिक पत्र तथा **ग्रन्थमाला** प्रकाशित करनेका प्रारंभ किया। परंतु यथेष्ट साहाय्यादि प्राप्त न होनेसे यथेप्सितरूपमें वह कार्य आगे न बढ सका।

पूनेमें रहते समय, हमें स्वर्गीय लोकमान्य तिलक और महात्मा गांधी आदि महापुरुषोंका भी साक्षात् परिचय हुआ और हमारे जीवनमार्गमें विशिष्ट परिवर्तन घटित हुआ। जिस वेषकी चर्याका आचरण हमने मुग्धभावसे बाल्यकाल ही में स्वीकृत किया था उसके साथ हमारे मनका तादात्म्य न होनेसे, हमारे मनमें, अपनी जीवनप्रवृत्तिके विषयमें एक प्रकारका बडा भारी आन्तरिक असन्तोष बढता जाता था। अन्तरमें वास्तविक विरागता न होने पर भी केवल बाह्यवेषकी विरागताके कारण लोकों द्वारा वंदन-पूजनादिका सन्मान प्राप्त करनेमें हमें एक प्रकारकी वंचना प्रतीत होती थी। इस लिये गुरुपदके भारसे मुक्त हो कर किसी सेवक पदका अनुसरण करनेका हम मनोरथ कर रहे थे और अपनी मनोवृत्तिके अनुकूल सेवाका उपयुक्त क्षेत्र खोज रहे थे।

सन् १९२० में, देशकी मुक्तिके लिये महात्माजीने असहयोग आन्दोलनका मंगलाचरण किया और उसीके अनुसन्धानमें, राष्ट्रीय शिक्षणके प्रचार निमित्त, अहमदाबादमें **गूजरातविद्यापीठ**की स्थापनाका आयोजन हुआ। मित्रोंकी प्रेरणा और महात्माजीकी आज्ञासे प्रेरित होकर हम पूनासे अहमदाबाद पहुंचे और वहां, अपनी मनोवृत्तिके अनुरूप कार्यक्षेत्र पा कर, एक सेवकके रूपमें, गूजरातविद्यापीठकी सेवामें सम्मीलित हुए।

विद्यापीठने, अन्यान्य विद्यामन्दिरोंके साथ प्राचीन साहित्य और इतिहासके अध्ययन और संशोधनके लिये **पुरातत्त्वमन्दिर** नामक एक विशिष्ट संस्थाका निर्माण किया और उसके मुख्य–आचार्य–पद पर हमारी नियुक्ति कर हमको अपने अभीष्ट क्षेत्रमें कार्य करनेका परम सुयोग दिया। पुरातत्त्वमंदिरके सञ्चालनमें हमें अध्यापक श्रीयुत रामनारायण पाठक, अ० श्रीरसिकलाल परीख, पंडितप्रवर श्रीसुखलालजी आदि सहृदय मित्रोंका प्रारंभ ही से हार्दिक सहचार मिला और इनके सहकार और सहविचारसे शीघ्र ही एक पुरातत्त्वविषयक ग्रन्थावलि प्रकट करनेकी योजना हाथमें ली गई। 'गूजरातपुरातत्त्व मन्दिर' एक राष्ट्रीय संस्था थी इस लिये उसका कार्यक्षेत्र राष्ट्रीय दृष्टिको

ले कर निश्चित करना आवश्यक था । अत एव उस संस्थाके द्वारा ऐसे साहित्यका निर्माण और प्रकाशन करना समुचित था जो किसी एक ही सम्प्रदाय या साम्प्रदायिक साहित्यका पोषक न हो कर समूचे भारतीय संस्कृतिका पोषक हो । तदर्थ जैन, बौद्ध, वैदिक और इस्लामिक साहित्यको भी उसके कार्य क्षेत्रमें सम्मीलित किया गया और उसी दृष्टिसे **पुरातत्त्वमन्दिर ग्रन्थावली** का प्रकाशन चालू किया गया । कुछ प्रासंगिक पुस्तकोंके सम्पादनके अतिरिक्त, हमने अपने लिये तो वही पुराना संकल्पित कार्य, मुख्य रूपसे मनमें निश्चित कर रखा था; और उसीके अनुसन्धानमें सबसे पहले हमने इस प्रबन्धचिन्तामणि की एक सुसम्पादित आवृत्ति तैयार करनेका और उसके साथ, इसीकी पूर्तिरूप, **प्रबन्धकोष, कुमारपालप्रबन्ध, वस्तुपालचरित्र, विमलप्रबन्ध** आदि ग्रंथ; तथा शिलालेख, ताम्रपत्र, ग्रन्थप्रशस्तिः–इत्यादि अन्यान्य प्रकारके गूजरातके इतिहासके साधनभूत संग्रह की संकलना करनेका उपक्रम किया ।

प्रबन्धचिन्तामणिका जो संस्करण, आजसे ४५ वर्ष पहले, शास्त्री रामचन्द्र दीनानाथने प्रकाशित किया था, वह यद्यपि उस जमानेके मुताबिक ठीक था, लेकिन आधुनिक दृष्टिसे वह बहुत ही अपूर्ण और अशुद्ध है । उसकी पाठ-शुद्धि ठीक नहीं है, मौलिक और प्रक्षिप्त पाठोंका उसमें कोई पृथक्करण नहीं है और कई पद्योंका–विशेषकर प्राकृत पद्योंका–रूप बडा विकृत कर दिया है । कुछ तो पुरातन लिपिविषयक अज्ञानता, कुछ ऐतिहासिक ज्ञानविषयक अल्प-ज्ञता, कुछ सांप्रदायिक परंपराविषयक अनभिज्ञता और कुछ प्राकृतादि भाषा विषयक अपरिचितताके कारण उनके संस्करणमें बहुतसी त्रुटियां रह गईं, जिससे ग्रंथका सुस्पष्ट स्वरूप समझनेमें कठिनाई पडती है । इस लिये सबके पहले हमने इस ग्रंथकी पाठशुद्धि करनेके लिये जैन भण्डारोंमेंसे पुरानी प्रतियां प्राप्त करनेका प्रयत्न किया । यथालभ्य प्रतियां मिल जानेपर ग्रंथकी प्रेसकापी तैयार की गई और कुछ हिस्सा छपनेके लिये प्रेसमें भी दे दिया गया । छपनेका कार्य प्रारंभ हो कर ग्रन्थके दूसरे प्रकाश तकका हिस्सा जब मुद्रित हो चुका था, तब, कईएक कारणोंको ले कर, हमारा युरोप जानेका इरादा हुआ । सोचा था कि वहां बैठे बैठे भी इस ग्रंथका मुद्रणकार्य चालू रह सकेगा और युरोपसे लौटते तक ग्रन्थ पूरा हो जायगा तो फिर तुरन्त आगेका काम प्रारंभ कर दिया जायगा । इस लिये हमने इसकी प्रतियां भी वहां (जर्मनीमें) जा कर मंगवा लीं । लेकिन युरोपके सामाजिक और औद्योगिक वातावरणने हमारे मनको अपने आजीवन-अभ्यस्त विषयसे विचलित कर दिया । इन पुरानी बातोंकी खोज-खाज करनेके बदले वहांके जो वर्तमान राष्ट्रीय, सामाजिक और औद्योगिक तंत्र हैं उनका विशेषावलोकन कर किसी एक सजीव प्रवृत्तिमें संलग्न होनेके तरंग हमारे मनमें ऊठने लगे और उसी दिशामें कुछ कार्य करनेके विचारोंसे मन व्यस्त रहने लगा । सबब इसके, वहां पर बैठ कर जो, इस ग्रंथका मुद्रणकार्य समाप्त कर देनेका संकल्प यहांसे करके निकले थे, वह पूरा नहीं हो पाया ।

सन् १९२९ के डीसेंबरमें हम वापस भारत आये । उस समय, लाहोर कॉंग्रेसके प्रोग्रामके मुताबिक देशमें नये विचारोंकी क्रान्तिसूचक लहरें ऊठ रही थीं । एक तो स्वयं युरोपसे मस्तिष्कमें कुछ नये विचार भर कर लाये थे और दूसरा यहां पर भी उसी प्रकारका भिन्नकार्यसूचक प्रक्षुब्ध वातावरण घनीभूत हो रहा था । गूजरात विद्यापीठमें भी विद्याका वातावरण न होकर सत्याग्रही युद्धका ही वातावरण गूंज रहा था । इस लिये इस ग्रन्थके, उस अधूरे पडे हुए कार्यको तत्काल हाथमें लेनेकी कोई इच्छा नहीं होती थी । आखिरमें सत्याग्रह-संग्राम छिड ही गया और देशके सब ही सेवकोंकी तरह, हम भी यथाक्रम ६ मासके लिये नासिकके शान्तिदायक समाधिविधायक कारागरमें जा पहुंचे । सचमुच ही नासिकके सेंट्रल जेलखानेमें जो चित्तकी शान्ति और समाधि अनुभूत की वह जीवनमें अपूर्व और अलभ्य वस्तु थी । वह जेलखाना, हमारे लिये तो एक परम शान्त और शुचि विद्या-विहार बन गया था । उसकी स्मृति जीवनमें सबसे बडी सम्पत्ति मालूम देती है । स्वनामधन्य सेठ जमनालालजी बजाज, कर्मवीर श्रीनरीमान, देशप्रेमी सेठ श्रीरणछोडभाई, साहित्यिकधुरीण श्रीकन्हैयालाल मुंशी आदि जैसे परम सज्जनोंका घनिष्ठ सम्बन्ध रहनेसे और सबके साथ कुछ न कुछ विद्या-विषयक चर्चा ही सदैव चलती रहनेसे, हमारे मनमें वे ही

पुराने साहित्यिक संकल्प, वहां फिर सजीव होने लगे। सहवासी मित्रगण भी हमारी रुचि और शक्तिका परिचय प्राप्त कर, हमको उसी संकल्पित कार्यमें विशेष भावसे लगे रहनेकी सलाह देने लगे। मित्रवर श्रीमुंशीजी, जो गूजरातकी अस्मिताके सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि हैं और जो गूजरातके पुरातन गौरवको आबाल-गोपाल तक हृदयंगम करा देनेकी महती कला-विभूतिसे भूषित हैं, उनका तो दृढ आग्रह ही हुआ कि और सब तरंग छोड कर वही कार्य करने ही से हम अपना कर्तव्य पूरा कर सकते हैं। अन्यान्य घनिष्ठ मित्रोंका भी यही उपदेश हमें वहां बैठे बैठे वारंवार मिलने लगा और जेलखानेसे मुक्त होते ही हमें वही अपने पुराने बही-खाते टटोलनेकी आज्ञा मिलने लगी।

संवत् १९८६ के विजयादशमीके दिन, मित्रवर श्रीमुंशीजीके साथ ही हमें जेलसे मुक्ति मिली। हम बम्बई हो कर अहमदाबाद पहुंचे। यद्यपि जेलखानेके उक्त वातावरणने मनको इस कार्यकी तरफ बहुत कुछ उत्तेजित कर दिया था, तो भी देशकी परिस्थितिका चालू क्षोभ, रह रह कर मनको अस्थिर बनाता रहता था। अखिरमें **श्रीमान् बाबू बहादुरसिंहजी सिंघी**का, शान्तिनिकेतन आ कर जैन साहित्यके अध्ययन-अध्यापनकी व्यवस्था हाथमें लेनेका आग्रह पूर्ण आमंत्रण मिलनेसे, और हमारे सदैवके सहचारी परमबन्धु पण्डित प्रवर श्रीसुखलालजीकी भी तद्विषक वैसी ही आज्ञा होनेसे, हम शान्तिनिकेतन आ पहुंचे। यहां विश्वभारतीके ज्ञानमय वातावरणने हमारे मनको एकदम उसी ज्ञानोपासनामें फिर स्थिर कर दिया और हमारी जो वह चिर संकल्पित भावना थी, उसको यथेष्ट समुत्तेजितकर दिया। साथ ही में, उस संकल्पको कार्यमें परिणत होनेके लिये, जिस प्रकारकी मनःपूत साधन-सामग्रीकी अपेक्षा, हमारे मनमें गूढ भावसे रहा करती थी, उससे कहीं अधिक ही विशिष्ट सामग्री, सच्चरित्र, दानशील, विद्यानुरागी श्रीमान् बहादुरसिंहजी सिंघीके उत्साह, औदार्य, सौजन्य और सौहार्द द्वारा प्राप्त होती देख कर, हमने बडे आनन्दसे इस **सिंघी जैन ज्ञानपीठ**के संचालनका भार उठाना स्वीकार किया।

यद्यपि, प्रारंभमें हमने इस स्थानका, जैनवाङ्मयका अध्ययन-अध्यापन करानेकी दृष्टिसे ही स्वीकार किया; लेकिन हमारे मनस्तलमें तो वही पुराना संकल्प दटा हुआ होनेसे, यहां पर स्थिर होते ही, वह संकल्प फिर सहसा मूर्तिमान् होकर हमारे हृदयांगणमें नाचने लगा, और वही पुरानी ऐतिहासिक-सामग्री, जिसको हमने आज तक, मुँजीकी पुँजीकी तरह बडे यत्नसे संचित रख कर बन्दी बना रखी है, हमारे मानसचक्षुके आगे खडी हो कर, कटाक्षपूर्ण टकटकी लगा कर ताकने लगी। हमारा व्यसनी मन फिर इस कामके लिये पूर्ववत् ही लालायित और उत्सुक हो उठा।

प्रसङ्ग पाकर हमने अपने ये सब विचार ज्ञानपीठके संस्थापक श्रीमान् बहादुरसिंह बाबूसे कह सुनाये; और 'ज्ञानपीठ'के साथ एक 'ग्रन्थमाला'भी स्थापित कर जैन साहित्यके रत्नतुल्य विशिष्ट ग्रंथोंको, आदर्शरूपसे तैयार कर-करवा, प्रसिद्धिमें लानेका प्रयत्न होना चाहिए, इस बारेमें सहज भावसे प्रेरणा की गई। इन बातोंको सुनते ही सिंघीजीने, उसी क्षण, बडे औदार्यके साथ, अपनी सम्पूर्ण सम्मति हमें प्रदान की और ऐसी 'ग्रंथमाला' के प्रारंभ करनेका और उसके लिये यथोचित द्रव्यव्यय करनेका यथेष्ट उत्साह प्रकट किया। इसके परिणाममें, सिंघीजीके स्वर्गीय पिता साधुचरित **श्रीमान् डालचन्दजी सिंघी**की पुण्यस्मृति निमित्त इस **सिंघी जैन ग्रन्थमाला** का प्रादुर्भाव हो कर, आज इसका यह प्रथम **'मणि'**–केवल'मणि' ही नहीं **'चिन्तामणि'**–पाठकोंके करकमलमें समर्पित हो रहा है।

इस ग्रंथके पूर्व संस्कारणादिका परिचय.

विदेशीय विद्वानोंमें, सबसे पहले इस ग्रन्थका परिचय, किन्लॉक फार्बस साहबको हुआ जिन्होंने गूजरातके इतिहासका **रासमाला** नामक सबसे पहला और अनेक बातोंमें अपूर्व ग्रन्थ लिखा। रासमाला के लिये ऐतिहासिक सामग्री इकट्ठी करनेका उपक्रम, जब फार्बस साहबने शुरू किया तब, प्रारम्भही में उन्हें वीरचन्द भण्डारी नामक एक शिक्षित जैन गृहस्थका अमूल्य सहकार मिल गया, जिसकी सहायतासे उन्हें गूजरातके पाटणके किसी जैनयतिजीके पास, प्रस्तुत ग्रन्थकी एक प्रति प्राप्त हो गई। रासमालाके पूर्वभागके प्रणयनमें प्रबन्धचिन्तामणिसे बहुत कुछ सहायता ली

गई है इतना ही नहीं लेकिन उसका सारा ही सारभूत ऐतिहासिक कलेवर प्रायः इसी ग्रन्थके आधार पर खडा किया गया है।

फार्बस साहबको जो पोथी पाटणसे मिली थी वह उन्होंने बम्बईकी 'फार्बस साहित्य सभा'को भेंट दे दी लेकिन पीछेसे वह पोथी वहांसे लुप्त हो गई। बम्बई सरकारने जब, अपना पुरातन साहित्यके अन्वेषण और संग्रह-करणका कार्य शुरू किया, तब डॉ० ब्युल्हर और प्रो० पीटर्सनको इस ग्रन्थकी प्राप्ति करनेकी बडी उत्कंठा हुई। बहुत कुछ परिश्रम करनेके बाद, सन् १८७४ में भटनेरके जैनग्रन्थभण्डारमें; इस ग्रन्थकी १ प्रति डॉ० ब्युल्हरके देखनेमें आई, जिसकी तुरन्त नकल करवा कर उन्होंने लंडनकी इन्डिया ऑफिस लाईब्रेरीको भिजवा दी। सन् १८८५ में, प्रो० पीटर्सनको इसकी १ प्रति प्राप्त हुई जिसके बारेमें, उन्होंने, अपनी पुस्तकविषयक खोज वाली दूसरी रीपोर्ट (पृ० ८६–८७) में इस प्रकार, इस पर, उल्लेख किया है–

"इस प्रकार जल्दीमें किये गए इन उल्लेखोंके अंतमें, कहना चाहिए कि–वर्षके आखिरी भागमें, मेरुतुङ्गरचित प्रबन्धचिन्तामणि ग्रंथकी १ प्रति प्राप्त करनेमें मैं सफल हुआ हूं। यह महत्त्वका ऐतिहासिक ग्रन्थ बडा उपयोगी है। अपने ग्रन्थसंग्रहमें इस ग्रन्थकी वृद्धि करनेका बहुत समयसे हमारा प्रयत्न रहा।" इत्यादि।

यह प्रति बम्बई सरकारके ग्रन्थसंग्रहमें–जो वर्तमानमें, पूनाके भांडारकर प्राच्यविद्यासंशोधन मंदिरमें, सुरक्षित है–अद्यापि विद्यमान हैं।

इसके सिवा, डॉ० ब्युल्हरको एक और प्रति, ऊमाशंकर याज्ञिक नामके गूजरातके किसी शास्त्री द्वारा प्राप्त हुई, जिसकी भी नकल करवा कर, उन्होंने उक्त इन्डिया ऑफिस लाइब्रेरीमें भिजवा दी।

पीटर्सन साहब द्वारा प्राप्त हुई उक्त पूनावाली प्रतिको देखकर, गूजरातके पं० रामचन्द्र दीनानाथ शास्त्रीको, जो पीटर्सन साहबके निरीक्षणमें सहायक रूपसे काम करते थे, इस ग्रन्थको मुद्रित कर प्रकाशित करने की इच्छा हुई। प्रयत्न करनेसे उनको, उक्त प्रतिके सिवा, दो-तीन अन्य प्रतियां भी जैन उपाश्रयोंमेसे मिल गईं थीं जिनका आश्रय ले कर उन्होंने आपना संस्करण, विक्रम संवत् १९४४ में, प्रकट किया। रामचन्द्र शास्त्रीने इस ग्रन्थका गूजराती भाषान्तर भी तैयार किया और उसको भी सं० १९४५ में छपवाकर प्रसिद्ध किया।

इतिहासकी दृष्टिसे इस ग्रंथका बडा महत्त्व होनेसे, इसका इंग्रेजी भाषामें अनुवाद करनेकी आवश्यकता डॉ० ब्युल्हरको मालूम दी; इस लिये उन्होंने, संस्कृत ग्रंथोंके इंग्रेजीमें अनुवाद करनेवाले सिद्धहस्त विद्वान् प्रो० सी. एच्. टॉनी. एम्. ए. को, इसका अनुवाद करनेकी प्रेरणा की। तदनुसार टॉनी साहबने बडे उत्साहसे इस ग्रंथका सम्पूर्ण इंग्रेजी अनुवाद तैयार किया, और कलकत्ताकी एसियाटिक सोसायटी ऑव बंगालने उसे प्रकाशित किया।

टॉनी साहबका मुख्य आधार, उक्त रामचन्द्र शास्त्रीद्वारा प्रकाशित आवृत्ति पर ही रहा, परंतु उन्होंने उपर्युक्त डॉ० ब्युल्हरवाली तथा प्रो० पीटर्सनवाली हस्तलिखित प्रतियोंका भी कुछ कुछ पुनरुपयोग किया और कहीं कहीं ठीक अर्थानुसन्धान प्राप्त करनेकी चेष्टा की। टॉनी साहबके मुकाबलेमें, रामचन्द्र शास्त्रीका गूजराती भाषान्तर सर्वथा निरुपयोगी और असम्बद्धप्राय मालूम देता है।

प्रस्तुत आवृत्तिके सम्पादनमें प्रयुक्त सामग्री.

जिन प्रतियोंका उपयोग हमने इस आवृत्तिमें किया है उनका संकेतपूर्वक परिचय इस प्रकार है।

(१) A अहमदाबादके डेलाका उपाश्रय नामक प्रसिद्ध जैन उपाश्रयमें सुरक्षित जैन ग्रंथभण्डारकी संपूर्ण प्रति। [डिब्बा नं. ३०; प्रति नं. ३४] इसको हमने A अक्षरसे संकेतित किया है। इस प्रतिके ५३ पत्र हैं जो दोनों तरफ लिखे हुए हैं। प्रतिके अन्तमें इस प्रकार संक्षिप्त पुष्पिका लेख है–"सं० १५०९ वर्षे फागुणसुदि ९ वार रवौ

पठता लषीः ॥ छ ॥ ॐनमो विना [य] काय ॥" लिपिकार कोई अजैन पठता नामक मालूम देता है। लिपि जैननागरी है और अक्षर सुवाच्य तथा सुन्दर है। पाठ भी प्रायः शुद्ध है।

(२) B अहमदाबादके उसी उपाश्रयकी दूसरी अपूर्ण प्रति। [डिब्बा नं. ५१, प्रति नं. ३५] इसका निर्देश हमने B अक्षरसे किया है। यह प्रति थोडी सी अपूर्ण है। इसके कुल ७१ पत्र हैं। अन्तके दो-एक पत्र नष्ट हो गये हैं, जिससे प्रस्तुत आवृत्तिके पृष्ठ १२१ की ५ वीं पंक्तिके पश्चात्से लेकर अन्ततकका ग्रंथभाग इसमें अनुपलब्ध है। इस प्रतिका यह अन्तभाग प्रायः तीन सौ वर्ष पहले ही नष्ट हो गया मालूम देता है। क्यों कि इसके विद्यमान अन्तके पत्र (७१) की अन्तिम पंक्तिके नीचे यह पद्य लिखा हुआ है–

संविग्नेनान्तिषदा तपगणपतिविजयसेनसूरीणाम्। श्रीरामविजयकृतिना चित्कोशे प्रतिरियं मुक्ता ॥

इस पद्यका अर्थ यह है कि–तपागण (तपागच्छ) पति आचार्य विजयसेनसूरिके संविग्न शिष्य श्रीरामविजयने यह प्रति ज्ञानकोश (ग्रन्थभण्डार) में रक्खी।

तपागच्छीय पट्टावलियोंके अनुसार विजयसेनसूरिका स्वर्गवास विक्रम संवत् १६७१ में हुआ, अतः उनके शिष्य रामविजय प्रायः उसी समयमें विद्यमान होने चाहिये यह स्वतः सिद्ध है।

अन्तिम पत्र अनुपलब्ध होनेसे इस प्रतिके लिखे जानेके समयके बारेमें कोई निश्चित विचार नहीं किया जा सकता; तो भी प्रतिकी स्थिति देखते हुए मालूम होता है कि यह प्रति भी करीब ५०० वर्ष जितनी पुरानी जरूर होगी। इस प्रतिका पाठ यद्यपि अशुद्धिबहुल है; तो भी कहीं कहीं इसका लेख बहुत शुद्ध और उपयुक्त मिल जाता है। इस प्रतिका किसीने पीछेसे कहीं कहीं संशोधन भी किया है और कई जगह पत्रोंके पार्श्वभागमें कुछ श्लोकादि भी लिख दिये हैं।

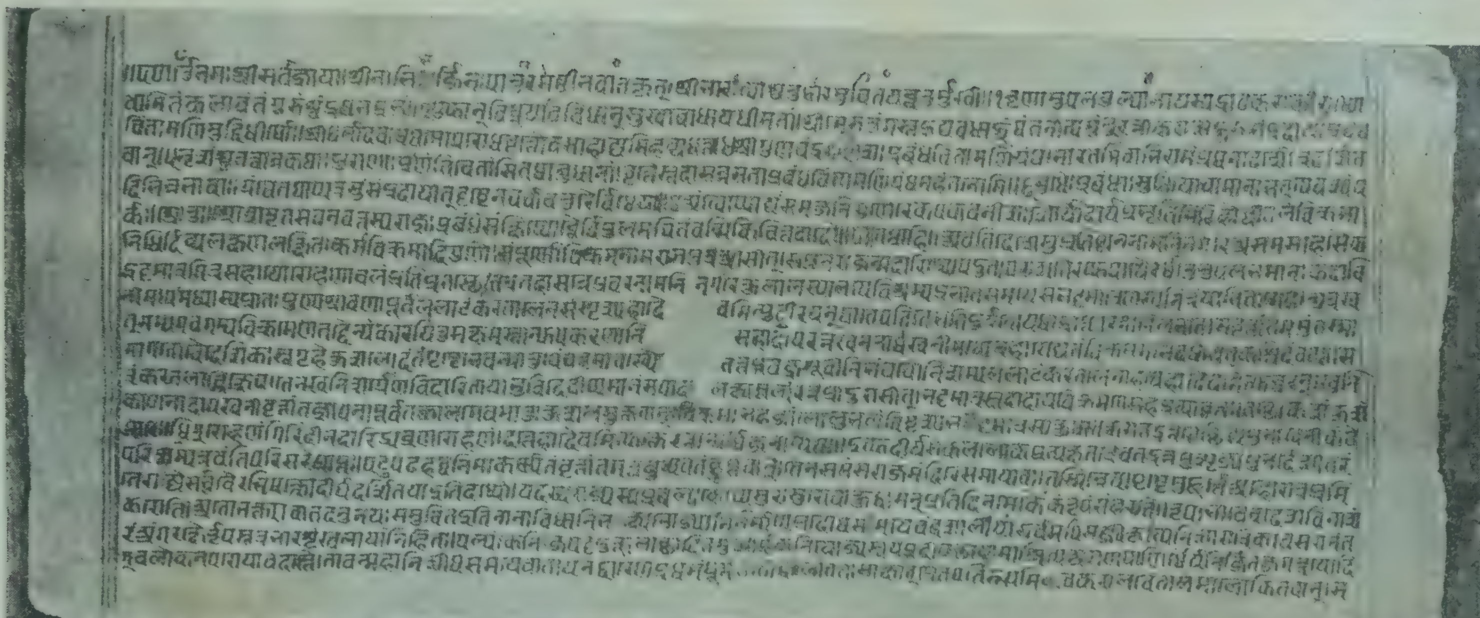
(३) P पाटणके सागरगच्छके उपाश्रयमें संरक्षित ग्रन्थभण्डारकी संपूर्ण प्रति। पत्र संख्या ८४। प्रथम पत्र और अन्तिम पत्रका एक-एक पार्श्व बिल्कुल कोरा। इस प्रतिका नामनिर्देश हमने P अक्षरसे किया है। अन्तमें लेखकादिका सूचन करनेवाला कोई उल्लेख नहीं है। पत्रादिकी अवस्था देखते हुए कमसेकम ३–४ सौ वर्षकी पुरानी तो यह होगी ही। लेकिन, जिस आदर्श परसे यह प्रति नकल की गई है वह आदर्श बहुत पुरातन मालूम देता है। सम्भवतः ताडपत्रमय हों। क्यों कि इस प्रतिमें बहुतसी जगह विनष्टीभूत शब्दांश या पंक्त्यंश सूचित करनेके लिये इस प्रकारकी अक्षरशून्य रेखायें रख दीं गईं हैं जिनका तात्पर्य यह है कि जिस आदर्श परसे यह नकल की गई है उसमें ये शब्द जीर्ण-शीर्णादिके कारण नष्ट-भ्रष्ट होगये होने चाहिए। इस प्रतिके पाठभेदादिके संबंधमें आगे पर लिखा गया है।

(४) Po पूना, भांडारकर प्राच्यविद्यासंशोधन मंदिरमें सुरक्षित, राजकीय ग्रंथसंग्रह–जो पहले डेक्कन कॉलेजमें रक्षित होनेसे, डेक्कनकॉलेज-संग्रह कहलाता था–की वह प्रति जिसका जिक्र ऊपर पीटर्सन साहबके उल्लेखके साथ हुआ है। इसका संग्रह नंबर ६१७, सन् १८८५–८६ है। पत्र संख्या ८१। इसके अन्तमें कोई लेखकादिका नाम नहीं है। प्रति बहुत पुरातन नहीं मालूम देती। अनुमानतः २००–२५० वर्ष जितनी पुरातन होगी। इसका सूचन हमने Po अक्षरसे किया है।

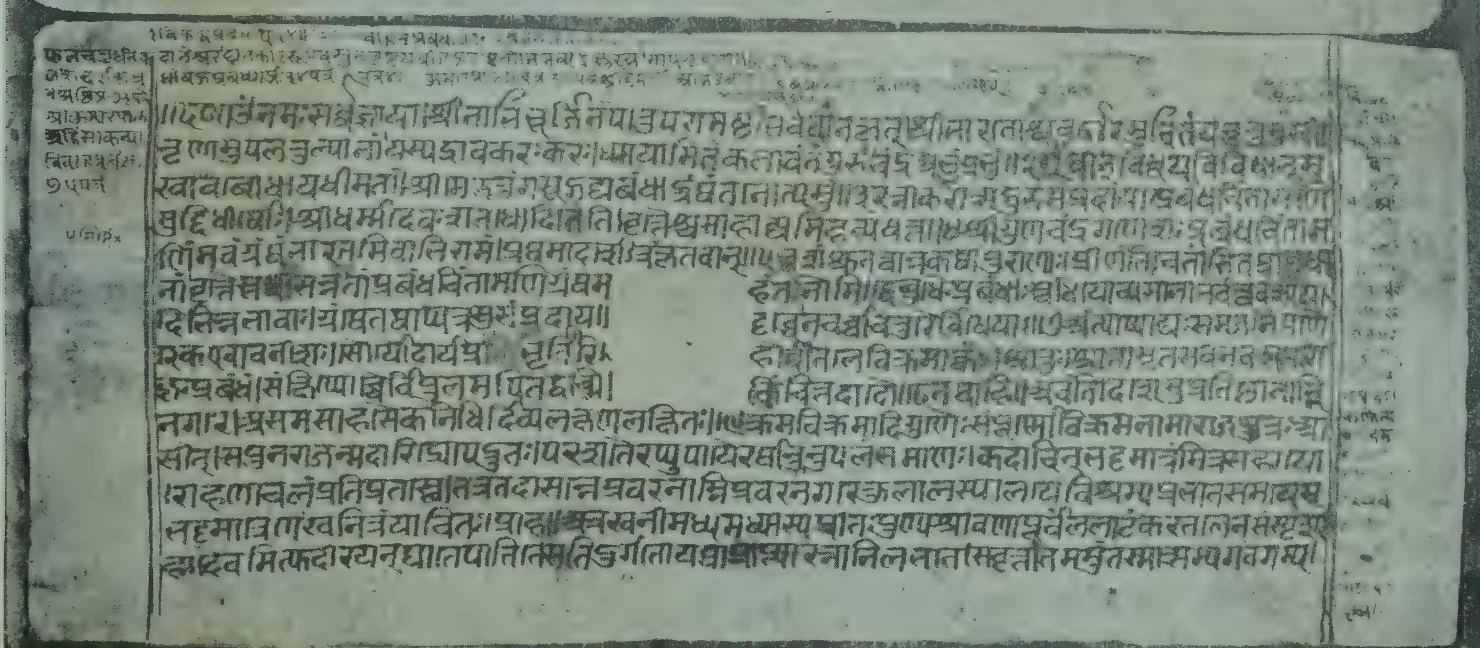
(५) D शास्त्री रामचन्द्र दीनानाथने सं० १९४४ में, बम्बईसे इस ग्रंथका जो संस्करण प्रकट किया उसको हमने D संज्ञासे निर्दिष्ट किया है।

Da. Db. Dc. Dd. रामचन्द्र शास्त्रीने अपने संस्करणमें मुख्यतया ऊपर नं. ४ में उल्लिखित पूनावाली प्रतिका ही उपयोग किया है; लेकिन कुछ और भी त्रुटित और खंडित ऐसी दो-तीन प्रतियां उनको मिलीं थीं जिन परसे उन्होंने कुछ पाठभेद संग्रह करनेका अव्यवस्थित उद्योग किया था और इन प्रतियोंकी उन्होंने A. B. C. D आदि संज्ञायें

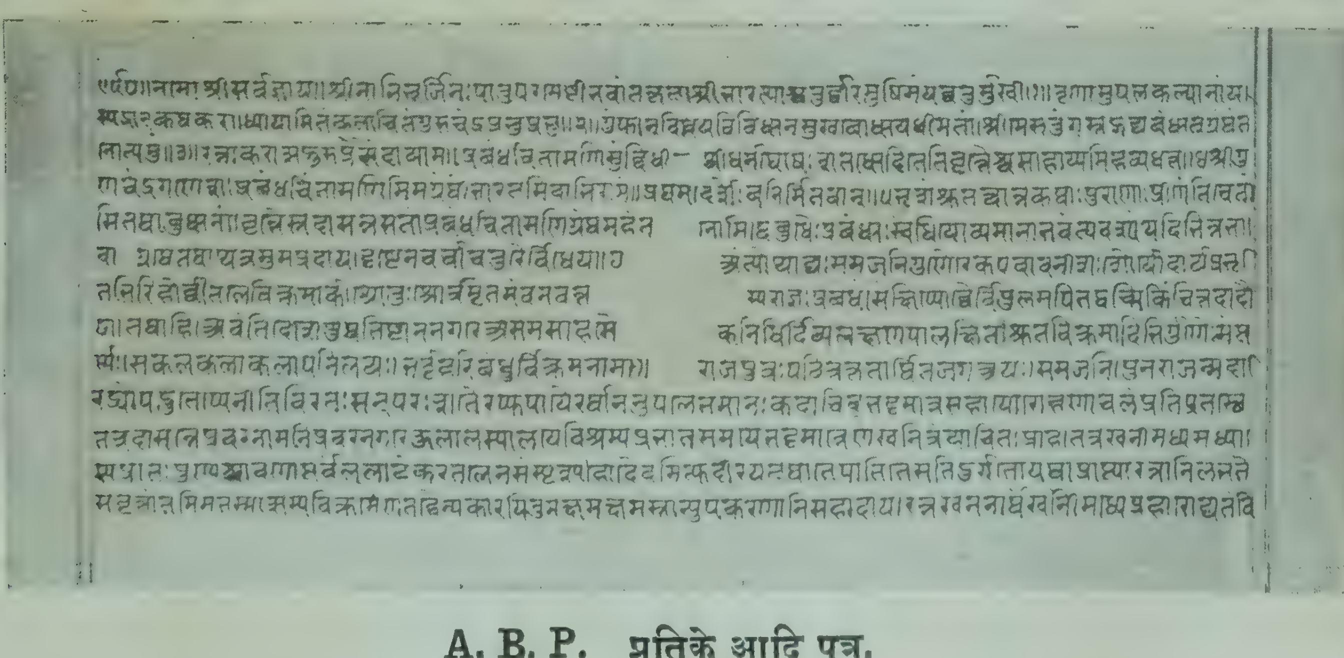
A प्रति



B प्रति



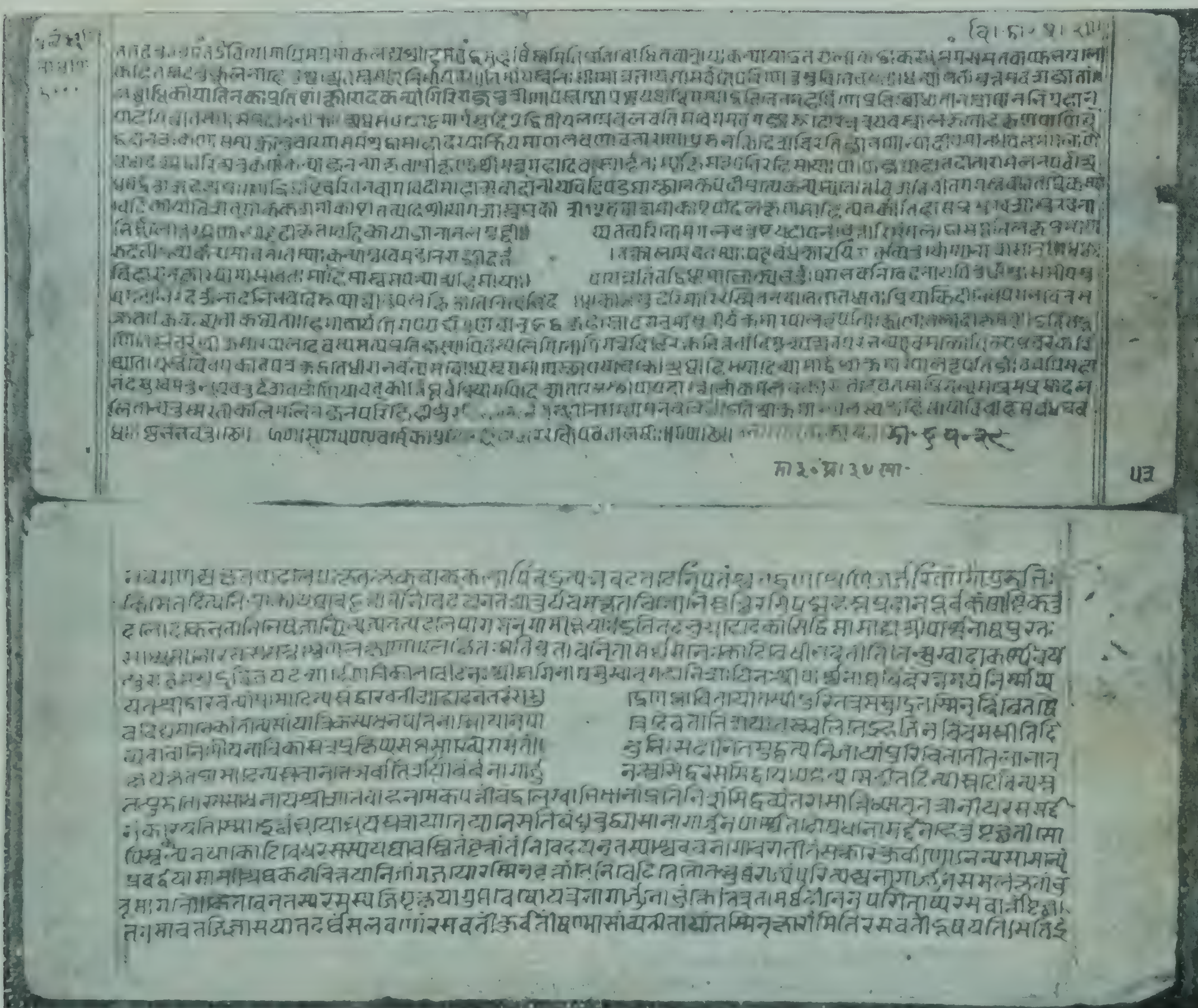
P प्रति



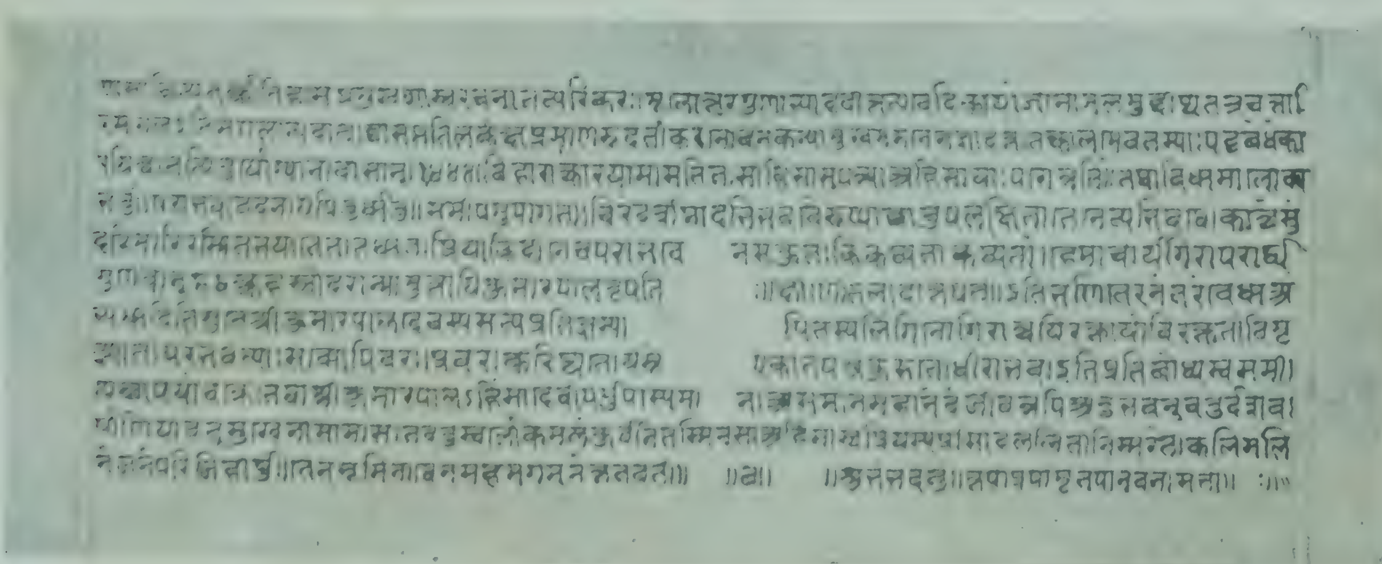
A. B. P. प्रतिके आदि पत्र.

A प्रति

B प्रति



P प्रति



A. B. P. प्रतिके अंतिम पत्र.

रक्खीं थीं । इन प्रतियोंके पाठोंको भी हमने कहीं कहीं संगृहीत किया है और उनका क्रमानुसार Da. Db. Dc. Dd. इत्यादि अक्षरोंसे निर्देश किया है ।

(६) Pa पाटणके संघके भण्डारकी [डिब्बा नं. ५०, प्रति नं. ८] एक प्रति जिसमें सिर्फ प्रबन्धचिन्तामणिगत 'मुंजभोजप्रबंध' लिखा हुआ है । वास्तवमें यह प्रति है तो राजशेखरसूरिरचित 'प्रबन्धकोष' की, लेकिन इसके अन्तमें प्रबन्धचिन्तामणिका उक्त प्रबन्ध भी लिखा हुआ है । इस प्रतिकी कुल पत्र संख्या १०५ हैं जिसमें १ से ९१ पत्र तक प्रबन्धकोष लिखा हुआ है और शेषके पत्रोंमें उक्त प्रबन्ध है । यह प्रति विक्रम संवत् १४५८ में लिखी गई थी । इसके अन्तका पुष्पिका लेख इस प्रकार है–

"इति श्रीमेरुतुङ्गाचार्यविरचिते प्रबन्धचिन्तामणौ श्रीभोजराजश्रीभीमभूपयोर्नानावदातवर्णनो नाम द्वितीयः प्रकाशः ॥ छ ॥ ग्रं० ४६४ ॥ श्रीः ॥ छ ॥ संवत् १४५८ वर्षे प्रथम भाद्रपदशुदि ११ एकादश्यां तिथौ बुधवारे श्रीसागरतिलकसूरिणा स्वशिष्यपठनार्थं श्रीअणहिलपुरपत्तने प्रबन्धानि राजशेखरसूरिविरचितानि आलिलिखे ॥"

यह प्रति प्रायः सुद्ध और बहुत सुन्दर अक्षरोंमें लिखी हुई है । इसका उपयोग हमने मुंज और भोजप्रबन्धवाले भागमें किया और इसे Pa अक्षरसे सूचित किया है ।

(७) Pb पूनाके उक्त राजकीय संग्रहमें, नं. ४५०, सन् १८८२–८३, की एक प्रति है जिसमें सिर्फ इस ग्रंथका द्वितीय प्रकाश–भोज-भीमभूपवर्णन नामका–लिखा हुआ है । इसके प्रान्तमें लेखक आदिका कुछ निर्देश नहीं है । अनुमान ३०० वर्ष जितनी पुरातन होगी । इसके कुल पत्र १९ हैं जिनमें १२ वां पत्र अप्राप्त है । इसका पाठ साधारण है लेकिन प्रबन्धान्तर्गत वर्णनोंका क्रम-विपर्यय और न्यूनाधिक्य बहुत अधिक पाया जाता है । इसका सूचन हमने Pb के संकेतसे किया है ।

(८) इस ग्रन्थके आदिके दो प्रकाशवाली १ प्रति, पाटणके तपागच्छके भण्डारमेंसे मिली [डिब्बा नं. ५७, प्रति नं. ५७] जिसके कुल १६ पत्र हैं । यह प्रति सं० १५२० की लिखी हुई है । इसका अन्तिम पुष्पिका लेख इस प्रकार है–

"संवत् १५२० वर्षे श्रावणशुदि १३ दिने तपागच्छनायक श्रीलक्ष्मीसागरसूरिशिष्य पं० ज्ञानहर्षगणिपादानां सा० सोनाकेन भा० रूडी प्रमुख कुटुंबयुतेन श्रीसिद्धांतभक्त्या लिखापितं ॥ छ ॥ श्रीसंघस्य कल्याणमस्तु ॥ छ ॥ श्रीः ॥"

इस प्रतिका पाठ प्रायः A आदर्शके समान है इस लिये इसको हमने कोई खास संज्ञा नहीं दी और सम्पादनमें कोई विशेष सहायता भी इससे नहीं ली गई ।

(९) पाटणके ऊपरवाले ही भण्डारमेंसे, पत्र संख्या १७ की एक प्रति [डिब्बा नं. ६६, प्रति नं. ११२] जिसमें, उपर्युक्त Pa आदर्शकी समान, सिर्फ मुंज-भोजप्रबन्धका हिस्सा लिखा हुआ है । इसका पाठ भी ऊपरवाले नं. ८ में सूचित आदर्शके समान ही पाया गया; इस लिये इसका भी कोई नामनिर्देश करना आवश्यक नहीं समझा ।

(१०) प्रो० सी. एच्. टॉनीने जो इस ग्रंथका इंग्रेजी भाषांतर किया है उसमें उन्होंने, मूल ग्रंथके पाठका संशोधन करनेका भी कुछ प्रयत्न किया है; और शास्त्री रामचन्द्रकी मुद्रित आवृत्तिके साथ, पूनावाली P प्रतिका तथा लंडनकी इन्डिया ऑफिसकी डॉ० ब्युल्हरवाली प्रतियोंका भी उपयोग कर कुछ पाठभेद, अपनी पुस्तककी पाद-टिप्पनीयोंमें उद्धृत किये हैं । लेकिन वे सब पाठभेद प्रायः हमारे इन संगृहीत आदर्शोंमें आ जाते हैं इस लिये हमने उनका पृथक् संकेतके साथ कोई निर्देश करना उपयुक्त नहीं समझा ।

प्राप्त आदर्शोंका वर्गीकरण.

इस प्रकार हमारे पास जो यह आदर्श-सामग्री उपस्थित हुई उसका परीक्षण करने पर हमें इसके ४ वर्ग मालूम दिये । १ ला वर्ग, A आदर्शका है जिसकी समानता प्रायः Po, D, Da और Dc आदर्शोंमें पाई जाती है ।

२ रा वर्ग, B आदर्शका है जिसकी समानता Db और Dd आदर्शोंके साथ है। ३ रा वर्ग, Pa और Pb का; और ४ था वर्ग, P का है।

इन वर्गोंमेंसे पहले और दूसरे वर्गमें तो परस्पर विशेष करके कुछ शब्दों और प्रतिशब्दोंका ही पाठभेद है और कुछ थोडेसे पद्योंकी न्यूनाधिकता मिलती है। ३ रा वर्ग, भोजप्रबन्धवाले प्रकरणोंमें कुछ विशेष रूपसे भेद प्रदर्शित करता है। इसमें भी Pa आदर्शकी अपेक्षा Pb आदर्श अधिक भिन्न है। इसमें कई प्रकरण, अन्यान्य आदर्शोंकी अपेक्षा आगे-पीछे लिखे हुए मिलते हैं इतना ही नहीं परंतु वे न्यूनाधिकरूपमें भी मिलते हैं।

P सञ्ज्ञक आदर्शकी विशेषता.

४ था वर्ग जो P आदर्शका है वह एक विषयमें सबसे भिन्नता और विशिष्टता रखता है। इस आदर्शमें सिद्धराज, कुमारपाल, वस्तुपाल-तेजपाल और अन्यान्य व्यक्तियोंके प्रशंसात्मक जो पद्यसमूह–सोमेश्वरदेव रचित कीर्तिकौमुदी नामक काव्यमेंसे–तत्तत्स्थलों पर, उद्धृत किया गया है वह अन्य किसी भी आदर्शमें उपलब्ध नहीं है। इन पद्योंकी संख्या कोई सब मिला कर १२० है। इतनी बडी पद्यसंख्याका इसमें प्राप्त होना; और, दूसरे सब आदर्शोंमें उसका सर्वथा अभाव मिलना; एक बहुत बडी समस्या उपस्थित करता है। क्या ये पद्य स्वयं ग्रंथकारने, पहले या पीछे, उद्धृत किये हैं या किसी अन्य लेखक द्वारा ये प्रक्षिप्त हैं?। ग्रंथकार स्वयं यत्र तत्र ऐसे बहुतसे पद्योंका अवतरण करनेमें खूब अभ्यस्त हैं, यह तो, उनके इस ग्रंथका अवलोकन मात्र करने ही से, निर्विवादरूपसे, मान लेना पडता है। सोमेश्वरदेवकी कीर्तिकौमुदीमेंसे भी इसी प्रकार उद्धृत किये हुए दो-एक अन्य पद्योंका अवतरण, (देखो पृ० ४८, और ६३) और और आदर्शोंमें भी दिखाई देनेके कारण, ग्रंथकारके सन्मुख कीर्तिकौमुदी काव्य भी रखा हुआ होगा, इस बातको मान लेनेमें भी कोई आपत्ति नहीं दिखाई देती। तो क्या ये सब पद्य भी उन्होंने ही अवतारित किये हैं?। अगर उन्हों ही ने किये हैं तो फिर, केवल इस आदर्शको छोड कर, और और आदर्शोंमें भी ये क्यों नहीं मिलते?। कोई विशेष साधन जब तक प्राप्त नहीं हो सकता, तब तक इस प्रश्नका निश्चित उत्तर देना अशक्य है। तो भी एक अनुमान जो हमें हो रहा है उसे पाठकोंके जाननेके लिये यहां निर्दिष्ट कर देते हैं। जैसा कि हम ऊपर, इस P प्रतिका परिचय देते हुए लिख आये हैं, कि यह प्रति, जिस आदर्श परसे उतारी गई है वह आदर्श बहुत पुराना होना चाहिए। अतः आदर्शके प्राचीन होनेमें तो हमें विश्वसनीय आधार प्राप्त होता है। इस प्राचीनत्वसे हमारा अभिप्राय स्वयं ग्रंथकारके समसामयिकत्वसे है। यदि यह प्रति, जैसा कि हम अनुमान करते हैं, ३–४ सौ वर्ष जितनी पुरानी है; तो, इसका मूल आदर्श, जो उस समय जीर्ण दशामें विद्यमान होना चाहिए, कमसे कम वह भी ३–४ सौ वर्ष जितना पुरातन होना चाहिए। यदि यह बात ठीक हो तो उस प्राचीन आदर्शका समय उतना ही पुरातन हो जायगा जितना ग्रंथकार मेरुतुङ्गाचार्यका है। मेरुतुङ्गाचार्यको प्रबन्धचिन्तामणिकी रचना समाप्त किये आज ६२८–२९ वर्ष हुए। हमारे अनुमानके मुताबिक उक्त प्राचीन आदर्शको भी इतने वर्ष तो सहज हो सकते हैं। इससे हम यह अनुमान करनेके लिये अनुप्रेरित होते हैं कि, इस आदर्शका जो मूल आदर्श होगा वह स्वयं मेरुतुङ्गाचार्यका, वह आदर्श होगा, जिसे या तो उन्होंने सबसे पहले तैयार किया हो; या सबसे पीछे तैयार किया हो। सबसे पहले तैयार करनेका तात्पर्य यह, कि पहले पहल ग्रंथकारने, जब ग्रंथकी रचना की, तब उन्होंने प्रसंगप्राप्त कीर्तिकौमुदीके ये सब पद्य, ग्रन्थगत वर्णनमें बहुत उपयुक्त समझकर, विपुलताके साथ उद्धृत कर लिये; लेकिन पीछेसे ग्रंथका पुनः संशोधन करते समय, इतने पद्योंका, एक साथ एक ही ग्रंथमेंसे उद्धरण करना मनमें ठीक न जंचा हो इस लिये उन्हें छोड कर, उस संशोधित आवृत्तिकी, और और नकलें करवाईं गईं हों और उन्हींका सर्वत्र प्रचार किया गया हो। वह मूल प्रथमादर्श कहीं भण्डारमें ज्यों का त्यों पडा रहा हो, जिसके नाशकालमें, इस विद्यमान P आदर्शके लेखकने उसका पुनरवतार कर, इस रूपमें, उसे चिरजीवी बना दिया हो। दूसरा विकल्प जो

यह कि–या सबसे पीछे इस आदर्शकी सृष्टि हुई हो; तो उसका कारण यह हो सकता है कि पहला आदर्श जो ठीक तैयार हुआ उसकी अनेक नकलें तैयार हो कर सर्वत्र प्रचारमें आगई हों; और फिर पीछेसे, बहुत कुछ समयके बाद, ग्रंथकारने ग्रंथके कलेवरको विशेष पुष्ट बनानेके लिये, ये सब पद्य अपनी कोईएक प्रतिमें प्रविष्ट कर उसका एक नवीन और परिवर्द्धित संस्करण बनाना चाहा हो; लेकिन उसका कोई विशेष प्रचार न होकर वह ज्यों कि त्यों भण्डारहीमें पडी रही हो और उपर्युक्त अनुमानानुसार, P आदर्शके लेखकने उसका यह पुनरवतार कर लिया हो। इन दोनों विकल्पोंमेंसे कौन विकल्प विशेष बलवान् हो सकता है इसके लिये भी हमें कुछ कल्पना हुई है, लेकिन उसका यहां पर विवेचन करना ज्यादह गौरवरूप हो जायगा, इस लिये आगेके भागमें यथाप्रसङ्ग उसका भी दिग्दर्शन करा दिया जायगा। इससे एक यह खास बात भी सूचित होती है, कि दोनों विकल्पोंमेंसे यदि कोईएक विकल्प भी ठीक हो सकता है, तो उस परसे, इस P आदर्शका मूलादर्श स्वयं ग्रंथकारका एक आदर्श था, यह प्रमाणित हो सकता है।

इस P आदर्शकी नकल उतारने वालेने, पुरातन आदर्शकी लिपिको ठीक ठीक नहीं समझनेके कारण, अक्षरांतर करनेमें बहुत भूलें कीं हैं जिससे इसका पाठ बहुत कुछ अशुद्ध बन गया है; तो भी जहां अन्य आदर्शोंमें भ्रष्ट पाठ मिलता है या अयथोपयुक्त शब्द दिखाई देते हैं, वहां इस प्रतिमें बहुत शुद्ध पाठ और समुचित शब्द उपलब्ध होते हैं। यह बात भी इस आदर्शके विशिष्ट संशोधित होनेकी सूचना देती है।

पाठभेदोंके संग्रह करनेकी पद्धति.

पाठभेदोंके संग्रह करनेकी हमारी पद्धति यह है, कि व्याकरण या भाषाकी दृष्टिसे जो शब्द शुद्ध माल्रम देते हैं उन्हीं शब्दोंका हम संग्रह करते हैं। सर्वथा अशुद्ध शब्दोंका या व्याकरणकी दृष्टिसे अपरूप पाठोंका, जैसा कि पश्चिमीय विद्वान् करते रहते हैं, हम संग्रह नहीं करते। अर्थानुसन्धानसे असंगत माल्रम देने पर भी यदि व्याकरणकी दृष्टिसे शब्दप्रयोग शुद्ध माल्रम देता है तो उसे हम पाठभेदके रूपमें संगृहीत कर लेते हैं। हां, जहां कहीं पाठमें बहुत कुछ गडबडी माल्रम दे और अर्थसंगति ठीक न लगे, वहां हम, ऐसे सर्वथा अशुद्ध शब्दोंको और भ्रष्टरूपोंको भी पूर्णरूपसे संगृहीत कर लेते हैं। देश्य विशेषनामोंके शुद्ध अशुद्ध सब ही रूपोंका संग्रह करना आवश्यक समझते हैं।

हमारे इस संस्करणमें मुख्य आधारभूत A, B और P आदर्शके आदि और अन्तके पत्रोंका हाफटोन चित्र बनाकर इस पुस्तकके साथ लगाये जाते हैं, जिससे पाठकगण, इन पुरातन आदर्शोंकी अक्षाराकृति-आदिका दर्शन भी प्रत्यक्षतया कर सकेंगे।

इस ग्रंथकी सम्पूर्ण संकलना कैसी होगी; और कौन कौन भागमें क्या क्या विषय रहेंगे; इसके लिये एक पृथक् पृष्ठपर पूरा विवरण दे दिया गया है जिसके अवलोकनसे पाठकोंको आगेके भागोंका किंचित् विषय-परिचय हो सकेगा।

अन्तमें, अहमदाबादके डेलाके भण्डारके तथा पाटणके भण्डारोंके संरक्षोंका, जिनके द्वारा हमको यह सामग्री प्राप्त हो सकी है, कृतज्ञतापूर्ण उपकार मान कर, इस 'किंचित् प्रास्ताविक'को पूर्ण करते हैं।

वि० सं० १९८८, सांवत्सरिक पर्व.
विश्वभारती. शान्तिनिकेतन। }

जिन विजय

॥ सिंघीजैनग्रन्थमालासम्पादकप्रशस्तिः ॥

स्वस्ति श्रीमेदपाटाख्यो देशो भारतविश्रुतः । रूपाहेलीति सन्नाम्नी पुरिका तत्र सुस्थिता ॥
सदाचार-विचाराभ्यां प्राचीननृपतेः समः । श्रीमच्चतुरसिंहोऽत्र राठोडान्वयभूमिपः ॥
तत्र श्रीवृद्धिसिंहोऽभूत् राजपुत्रः प्रसिद्धिमान् । क्षात्रधर्मधनो यश्च परमारकुलाग्रणीः ॥
मुञ्ज-भोजमुखा भूपा जाता यस्मिन्महाकुले । किं वर्ण्यते कुलीनत्वं तत्कुलजातजन्मनः ॥
पत्नी राजकुमारीति तस्याभूद् गुणसंहिता । चातुर्य-रूप-लावण्य-सुवाक्सौजन्यभूषिता ॥
क्षत्रियाणीप्रभापूर्णां शौर्यदीप्तमुखाकृतिम् । यां दृष्ट्वैव जनो मेने राजन्यकुलजा त्वियम् ॥
सूनुः किसनसिंहाख्यो जातस्तयोरतिप्रियः । रणमल्ल इति ह्यन्यद् यन्नाम जननीकृतम् ॥
श्रीदेवीहंसनामात्र राजपूज्यो यतीश्वरः । ज्योतिर्भैषज्यविद्यानां पारगामी जनप्रियः ॥
अष्टोत्तरशताब्दानामायुर्यस्य महामतेः । सचासीद् वृद्धिसिंहस्य प्रीतिश्रद्धास्पदं परम् ॥
तेनाथाप्रतिमप्रेम्णा स तत्सूनुः स्वसन्निधौ । रक्षितः, शिक्षितः सम्यक् कृतो जैनमतानुगः ॥
दौर्भाग्यात्तच्छिशोर्बाल्ये गुरु-तातौ दिवंगतौ । मुग्धीभूय ततस्तेन त्यक्तं सर्वं गृहादिकम् ॥

तथा च–

परिभ्रम्याथ देशेषु संसेव्य च बहून् नरान् । दीक्षितो मुण्डितो भूत्वा कृत्वाऽऽचारान् सुदुष्करान् ॥
ज्ञातान्यनेकशास्त्राणि नानाधर्ममतानि च । मध्यस्थवृत्तिना येन तत्त्वातत्त्वगवेषिणा ॥
अधीता विविधा भाषा भारतीया युरोपजाः । अनेका लिपयोऽप्येवं प्रत्न-नूतनकालिकाः ॥
येन प्रकाशिता नैका ग्रन्था विद्वत्प्रशंसिताः । लिखिता बहवो लेखा ऐतिह्यतथ्यगुम्फिताः ॥
यो बहुभिः सुविद्वद्भिस्तन्मण्डलैश्च सत्कृतः । जातः स्वान्यसमाजेषु माननीयो मनीषिणाम् ॥
यस्य तां विश्रुतिं ज्ञात्वा श्रीमद्गान्धीमहात्मना । आहूतः सादरं पुण्यपत्तनात्स्वयमन्यदा ॥
पुरे चाहम्मदाबादे राष्ट्रीयशिक्षणालयः । विद्यापीठमिति ख्यातः प्रतिष्ठितो यदाऽभवत् ॥
आचार्यत्वेन तत्रोच्चैर्नियुक्तो यो महात्मना । विद्वज्जनकृतश्लाघे पुरातत्त्वाख्यमन्दिरे ॥
वर्षाणामष्टकं यावत् सम्भूष्य तत्पदं ततः । गत्वा जर्मनराष्ट्रे यस्तत्संस्कृतिमधीतवान् ॥
तत आगत्य सँल्लग्नो राष्ट्रकार्ये च सक्रियम् । कारावासोऽपि सम्प्राप्तः येन स्वराज्यपर्वणि ॥
क्रमात्तस्माद् विनिर्मुक्तः प्राप्तः शान्तिनिकेतने । विश्ववन्द्यकवीन्द्रश्रीरवीन्द्रनाथभूषिते ॥
सिंघीपदयुतं जैनज्ञानपीठं यदाश्रितम् । स्थापितं तत्र सिंघीश्रीडालचन्दस्य सूनुना ॥
श्रीबहादुरसिंहेन दानवीरेण धीमता । स्मृत्यर्थं निजतातस्य जैनज्ञानप्रसारकम् ॥
प्रतिष्ठितश्च यस्तस्य पदेऽधिष्ठातृसञ्ज्ञके । अध्यापयन् वरान् शिष्यान् शोधयन् जैनवाङ्मयम् ॥
तस्यैव प्रेरणां प्राप्य श्रीसिंघीकुलकेतुना । स्वपितृश्रेयसे चैषा ग्रन्थमाला प्रकाश्यते ॥
विद्वज्जनकृताह्लादा सच्चिदानन्ददा सदा । चिरं नन्दत्वियं लोके जिनविजयभारती ॥